बनारस की सिर्फ गलियॉ ही तंग नही है

पता नही कौन सा दुःख रजिस्ट्रार साहब को खाए जा रहा था!
चौबीस घंटे देशी ठर्रा पीकर नशे मे धुत्त वो अपने कमरे मे बन्द रहते थे। रह रह कर कमरे से उनकी खॉसियों और उल्टियों की आवाजें आती थीं। वो दिन भर कुछ न कुछ भुनभुनाते ही रहते थे। बीच बीच मे वो कोई एक नाम लेकर गालियॉ भी बकते थे। उनकी भद्दी गालियॉ तो सुनी जा सकती थी पर किसे वो गालियॉ देते थे. ये किसी को भी पता न चल पाता था। उन्हे न खाने की परवाह थी. न अपनी कोई सुध। एक प्रतिष्ठित नौकरी मे रहने के बावजूद भी न उन्हे अपने नाम की. न अपने नौकरी की ही चिन्ता थी। दिन मे तीन चार बार वो पास के ही देशी ठेके पर ठर्रा खरीदने जाते थे. पर अपने पीछे अपने कमरे का ताला लगाना प्रायः न भूलते थे। वापस आकर फिर से वो अपने कमरे मे बन्द हो जाते थे। जब कभीं वो अपने कमरे मे ताला लगाना भूल जाते थे. उनकी पत्नी झटपट उनके बिस्तर वगैरह बदल देती थी. फर्श वगैरह साफ कर देती थी। फिर अचानक बरामदे मे थाली के गिरने का शोर होता था. रोटी और सब्जी फर्श पर बिखरी पड़ी होती थी। उनका दरवाजा फिर से बन्द हो जाता था। वो फूट फूट कर रोने लग पड़ लगते थे।
वो दफ्तर जाते ही न थे। पता नही उनकी नौकरी कैसे बची हुई थी! पति पत्नी के बीच का सम्बन्ध यदा कदा गालियों के आदान प्रदान तक ही सीमित था। रजिस्ट्रार साहब दॉत किचकिचाकर रह जाते थे।
वो एक छोटे कद के सॉवले से व्यक्ति थे। उनका खुरदुरा सा चेहरा हमेशा सूजा ही रहता था। उनके विपरीत उनकी पत्नी चालीस वर्ष की होते हुए भी बेहद आकर्षक. सौम्य और सभ्रान्त थीं। सज धज कर रिकसे पर बनारस घूमती रहती थी. खरीददारियॉ करती रहती थीं। पान और पिक्चरों का भी उन्हे बेहद शौक था। अपने पति की सुनियोजित और करीब करीब निर्धारित आत्महत्या की प्रक्रिया से न वो चिन्तित दिखती थीं और न उदास ही। न तो उनका खिलखिलाना बन्द हुआ था और न तो न उनके बच्चों का ही।
बड़ी बेटी यही कोई पन्द्रह सोलह वर्ष की रही होगी। कद और नाक उसे अपने बाप से मिले थे। उसके चौड़ी सी नाक पर एक बड़े फ्रेम का पावर वाला चश्मा चौबीस घन्टे चढा रहता था। वो बनारस के उदय प्रताप कॉलेज से हाई स्कूल कर रही थी। बेटा दस साल का था और किसी एक मिशनरी स्कूल मे पढने जाता था। बेटा अपनी मॉ पर गया था।
एक ही छत के नीचे दो कमरो मे दो तरह का जीवन था। धूप और छॉव अगल बगल कन्धे से कन्धा सटाये खड़े थे। पता नही कब इस परिवार की समवेत खुशियॉ चिटकीं और इस परिवार के समवेत जीवन मे एक दरार आया!
इन दोनो बच्चों के लिए एक प्राइवेट टयूटर था. जो मेरे दोस्तों मे से एक था. बाबुल नाथ तिवारी। हम उसे लन्दफंदिया तिवारी कहके बुलाते थे। वो मिर्जापुर का रहने वाला था और धोती कुर्त्ता पहनता था। बनारस के नरायनपुर गॉव मे उसके एक रिश्तेदार का दुमंजिला मकान बन रहा था। निचली मंजिल करीब करीब पूरी हो चली थी। वो एक कमरे मे मुफ्त मे रहता था तथा मकान मे चल रहे कामो की देख रेख करता था। वो बेहद समाजिक और व्यवहारिक था। हर दिन शाम को वो रजिस्ट्रार साहब के बच्चों के होम वर्क्स चेक करके उन्हे इधर उधर की कहानियॉ सुनाकर. चाय पकौड़े खाकर वापस आ जाता था। इसके लिये महीने मे उसे साठ रूपये भी मिलते थे। उसी से मुझे इस परिवार का हालचाल मिलता रहता था। उसकी राय रजिस्ट्रार साहब की पत्नी व उनकी बेटी के लिए बहुत ऊँची न थी। इस परिवार के बारे मे जितने मुँह उतनी ही बातें। बेटी भी बड़े खुले और उन्मुक्त स्वभाव की थी। लड़कों से हॅस बतिया लेती थी। कई तो कोई न कोई बहाना बनाकर उसके घर तक पहुँच जाते थे। मॉ की तरफ से उसे हर तरह की स्वतन्त्रता थी। रजिस्ट्रार साहब को ये लड़के फूटी ऑखो भी न सुहाते थे. पर वो भी क्या करते! उनका कोई वश न चलता था। एक क्षत्रिय परिवार की लड़की की इतनी स्वतंत्रता बनारस जैसे शहर मे अपवाद ही थी। उसे लोग छिनाल भी कहने लग पड़े थे. जिसकी उसे लेशमात्र भी परवाह न थी।
लोगो की जुबान किसने रोकी है!
बाप चौबीस घन्टे ठर्रा पीकर धुत्त पड़ा रहता है. मॉ सज सॅवर कर पता नही किससे किससे मिलती रहती है. बेटी दिन भर अवारों के साथ अपने कमरे मे गुलछर्रे उड़ाती है। ये थी लोगों की राय इस परिवार के बारे मे। लोग भी क्या करते! कहॉ से इस परिवार के बारे मे अच्छी राय लाते!
इस परिवार के बारे मे तरह तरह की भ्रान्तियॉ बनारस मे फैली हुई थीं। रजिस्ट्रार साहब की पत्नी चेयरमैन से फॅसी है. जिनके बदौलत रजिस्ट्रार साहब की नौकरी व उनका सरकारी मकान अब तक सुरक्षित है। वो कचहरी मे मुकदमा हार चुके हैं। उनकी सत्तर प्रतिशत तनख्वाह सीधे उनके पत्नी को मिल जाती है। उनकी पत्नी के चेयरमैन साहब के अलावे बनारस के और कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों से सम्बन्ध हैं इत्यादि इत्यादि।
इन भ्रान्तियो मे कितनी सच्चाई थी. ये तो भगवान ही जाने पर मै स्वयम बनारस को अच्छी तरह से जानता हूँ। यहॉ के दो नियम बड़े सख्त हैंः लड़की अगर अपनी नजर सड़क के अलावे कहीं और उठा दे तो वो आम भाषा मे फरकट कहलाती है और लड़का कोल्हू के बैल वाली परिधि से नीचे वाली परिधि मे तो श्रवण कुमार है और बाहर वाले मे आवारा। यही है बनारस का न्याय। शादीसुदाओ पर ये नियम उतने कारगर नही हैं। बनारस फिर सब कुछ साला साली जीजा देवर के दायरे मे लेकर अपनी ऑखे मूंद लेता है।
इस बदनाम उपेक्षित और रहस्यमय परिवार मे जाना दालमंडी की सीढियों पर चढने जैसा ही था। ये मेरा अपना अनुभव है। मै भी इस परिवार मे दस दिन बच्चों को पढाने गया था. बाबुलनाथ के आग्रह पर। पूरे नदेसर की ऑखे उठ जाती थी। लौटने पर रोज ही मेरे सायकल की हवा गायब रहती थी। कभी अगले पहिये की तो कभी पीछले पहिये की. वो भी वेन्टिल समेत। लोगों की भेदती ऑखे वरूणा पुल तक मेरा पीछा करती थीं।
नदेसर पर बस के अडे के समीप ही एक लम्बा सा दो मंज़िला भवन है. जो यू पी कोऑपरेटिव फेडरेशन का है। दूसरी मंज़िल के कई कमरो मे फेडरेशन की ऑफिसे हैं। इन ऑफिसो के बगल मे ही रजिस्ट्रार साहब का दो कमरे का मकान था। भवन के बाकी कमरो मे कई दूसरी दुकाने भी थी. जैसे खादी गामोद्दोग संघ. विलायती शराब. कपड़े. मिठाइयो. चाय पान पकौड़े. गाड़ी के स्पेयर पार्टस. स्कूटर सायकल की मरम्मतों के अलावे टेलरिंग शॉप्स इत्यादि इत्यादि। भवन के सामने बनारस के राजा का एक खाली महल एक बड़े लम्बे चौड़े अहाते मे फैला हुआ था. जहॉ एक पॉचसितारा होटल बनने की बात चल रही थी। भवन के पीछे खाद. सिमेन्ट. चीनी. बीजों की कई बड़ी बड़ी गोदामे थीं।

नदेसर की सड़क बनारस की सबसे चौड़ी सड़क है और अच्छी हालत मे भी थी और है। समीप ही पी डब्ल्यू डी के इन्जिनयरों की स्टाफ कॉलनी है। सबकुछ होने के बावजूद नदेसर मे वो चहल पहल नही है. जो बनारस के दूसरे इलाको मे है।
तंग गलियो मे ही बनारस का जीवन है। लोग बाग धक्कम धुक्की के अभ्यस्त हैं। फेडरेशन भवन की दुकानो के बन्द हो जाने के बाद व आखिरी बस के चल देने के बाद ये इलाका प्रायः सो जाता है। बस एकाध पान की दुकाने खुली रहती थी. जिनके गैस की लालटेन मद्धम व तेज होकर ऊँघती रहती थीं। इन दुकानों पर आसपास के रंगदारों का मजमा लगा रहता था। मै स्वयम नदेशर मे खॉसने से पहले दो बार सोच लेता था। दुकानदारो से भी भईया ही कहकर बात करता था।
रजिस्ट्रार साहब का परिवार कब और क्यों विश्रंखलित हुआ. इन दस दिनो मे मै न जान पाया। इस तहत न मैने किसी से कुछ पूछा और न किसी ने मुझे कुछ बताया। नज़रे नीची किये इस परिवार मे जाना और ऐसे ही वापस लौट जाना। वरूणा पुल के आगे कचहरी के पास मेरी पहली सॉस वापस लौटती थी। कभी कभी तो मनचले मुझसे इतना तक पूछ लेते थेः का हो कुछ पउला!अब मै उन्हे क्या बताता_ चुपचाप हॉस्टल वापस लौट आता था।
अक्सर मै इस परिवार के बारे मे सोचता रहता था। बिना खाए पीए इन देशी ठर्रो पर रजिस्ट्रार साहब का शरीर कब तक उनका साथ देगा!इन बच्चो का क्या होगा!उनके न रहने पर उनकी पत्नी अपने बच्चों को कितना संरक्षण दे पाएँगी!अन्धकार ही अन्धकार मुझे हर तरफ दिखता था।
बाबुलनाथ के वापस आने पर मैने वहॉ जाना बन्द कर दिया. पर बाबुलनाथ को भी इस टयूशन से हॉथ धोना पड़ा। एक दो बार तो ये परिवार मेरे हॉस्टल तक आ पहुँचा। मुझे उन्हे साफ साफ मना करना पड़ा। मै उन दिनो अपने स्वयम की संक्रमणताओं से जूझ रहा था। दूसरे विषयों के लिये मेरे पास न समय था और न हिम्मत। हर समाज की अपनी एक परम्परा है. जिसे तोड़ने का हक़ भी सभी को है. पर परिणामो को झेलने की हिम्मत कितनो मे है!मै परम्पराओ की ताकतें जानता था और जानता हूँ।
अपने इन दस दिनो मे मुझे बस एक ही अच्छी खबर मिल पाई कि रजिस्ट्रार साहब की बेटी शादीसुदा है। उसकी ससुराल आसाम के डिबरूगढ मे है। उसके ससुर एक बहुत बड़े चाय बगान के मैनेजर हैं। उसके पति का नाम अंशुमान है. जो अमेरिका पढने गया हुआ है। पहले तो मै चौंका. विश्वास तक न हुआ। विवाह भी सजातीय था। ये शादी कैसे सम्भव हो सकी!इस परिवार की लड़की इतने धनी व सभ्रान्त परिवार मे कैसे ब्याही जा सकी!ये सब कुछ मुझे बड़ा रहस्यमय लगा. पर ये सच था। रजिस्ट्रार साहब के तमाम पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्ध प्रायः शून्य हो चले थे. पर उनके पास राजा दशरथ जैसा एक समृद्ध समधी था।
मै उनके बच्ची के ससुराल भी जा चुका हूँ। उसके सास ससुर. जेठ जेठानी सब के सब बड़े मिलनसार. हँसमुख. नम्र व सज्जन लगे। एक बड़ा सा सजा सजाया भव्य सा मकान उनका अपना निजी मकान था। जगह जगह अंशुमान व रजिस्ट्रार साहब की बच्ची के शादी ब्याह के बड़े बड़े फोटो करीने से मढे यहॉ वहॉ लटके हुए थे। मै उनका कोई सम्बन्धी न था फिर भी मेरे स्वागत सत्कार मे उन्होने कोई कमी न आने दी। मै इनके साथ दो दिन रहा। घर का सारा काम घर की बड़ी बहू ही देखती थी। अंशुमान का बड़ा भाई भी एक चाय बगान का मैनेजर था। ठीक ठाक समृद्ध ससुराल थी। मुझे वो कई चाय बगान भी दिखलाने ले गए। एक तरह से वो आसाम मे विदेशी ही थे. फिर भी आसपास के क्षेत्रो मे उनका बड़ा मान सम्मान और दबदबा था। इस पूरे परिवार मे मुझे अंशुमान की मॉ ही सबसे स्पष्ट. उदार और ईमानदार दिखीं। बड़ा भोला स्वभाव था उनका। सारे दुराव छिपाव के बावजूद भी मुझे वो ये संकेत दे चुकी थीं कि उन्हे अपने बेटे के वापस लौटने की कोई आशा नही है. फिर भी वो अपने बहू को जन्म भर अपने साथ बेटी की तरह रखने को तैयार हैं। अंशुमान ने अमेरिका मे दूसरी शादी कर ली है. ये उनका दिल कहता था। उनका ये भी खयाल था कि अंशुमान की रजिस्ट्रार साहब की बेटी से शादी एक गलत शादी थी। मेरा भी यही खयाल था। इन दोनो परिवारो मे तो कोई साम्य था ही नही और न कोई साम्य अंशुमान और उसकी पत्नी मे था। कहॉ वो लम्बा चौड़ा एक सम्मानित परिवार का शिक्षित लड़का और कहॉ वो एक बदनाम परिवार की छोटे से कद की समान्य सी लड़की।
एक दिन अंशुमान की मॉ तो रोने ही लग पड़ीःअब तुम्हे क्या बताये बेटा. मेरी अपनी कोख से जनमा बेटा न मेरी नाक कटवा गया. बल्कि मुझे बड़े कष्ट्र मे डाल गया है। बहू का चेहरा याद आते ही मेरे ऑखो की नींद उड़ जाती है। कमीना वहॉ परदेश मे गुलछर्रे उड़ा रहा है और हमसे हमारे अपने सगे रिश्तेदार तक मुँह मोड़े बैठे हैं। मेरी बहू भी तो मान मर्यादा का जरा भी ख्याल नही रखती। मै चुप हो जाती हूँ। उसे हमे सजा देने का पूरा हक़ है।
मै बड़े भारी मन से वापस बनारस लौटा।
इस तरह की बेजोड़ शादियॉ क्या अब हमारे देश मे मान्यताओं और परम्पराओं से नही बॉधी जा सकेंगी!इनका विघटन क्या वाकई मे अवश्यम्भावी होता जा रहा है!मेरे अपने गॉव मे भी कई बेमेल शादियॉ हुई थी. पर अपनी पत्नी को नकारने की हिम्मत किसी ने न की जा सकी। मेरा गॉव इस मामले मे बेहद सख्त था।
एक बार मै रजिस्ट्रार साहब की पत्नी को समझा बुझा कर उनकी बेटी को डिबरूगढ भिजवाने का प्रयास भी किया और सफल भी हुआ। रास्ते मे आए धनबाद स्टेशन पर वो उतरकर सीधे हमारे घर जा पहुँची और वहॉ एक सप्ताह रूक भी गई। गई रात तक मेरे छोटे भाईयों के साथ बैठकर ताशें खेलती रहती थी। किसी तरह मॉ उसे समझा बुझा कर अपने कमरे मे ले जाती थीं और अपने बगल मे सुला लेती थीं। ये लड़की तो मेरे मॉ के लिए सिरदर्द बन गई थी। पूरे सप्ताह भर मेरी मॉ के चौबीस घन्टे उसकी चौकीदारी मे बीते। इसकी उलाहना वो मुझे आज तक देतीं हैं। बड़ा दबाव डालकर मॉ ने उसे वापस आगे डिबरूगढ भेजा। ससुराल मे भी वो दो सप्ताह से ज्यादे न टिकी। सास ससुर की सेवा से ज्यादे उसे अपनी स्वतंत्रता प्रिय थी. जो सिर्फ बनारस मे ही सम्भव थी। फिर उसे सेवा भाव की शिक्षा भी अपनी मॉ से कम ही मिली थी।
बनारस मे उसकी बदनामी बढती ही जा रही थी। मै नही समझता कि उसके पॉव कभीं डगमगाये होंगे। बस बनारस दिल्ली. बाम्बे या कलकत्ता नही है। बनारस की अपनी एक परम्परा है. जिससे टकराने का सीधा अर्थ भ्रान्तियों को पैदा करना है. जो एक तरह से लोगों का आम और दैनिक मनोरंजन है। भगवान शिव के त्रिशूल पर बसे इस नगरी का एक तंग गली तक चौड़ा नही किया जा सका. इसकी परम्पराओं पर कौन उँगली उठा सकता है!रजिस्ट्रार साहब की अबोध बच्ची को ये सब कौन समझाता!जो उसे समझा सकता था. वो अपने जीवन से हार चुका था।
रजिस्ट्रार साहब ने भी अपना अन्तिम समय बुला ही लिया जिसे उनके परिवार ने सहज ही लिया. पर बनारस ने नही। बनारस परम्परागत दो अवसरों पर समवेत अपनी अंगोछी से अपने ऑसू पोंछता है। किसी के मरने पर या फिर किसी बेटी की विदाई पर। यहॉ वो कोई अपवाद नही जानता। सब कुछ

भूला बिसरा कर वो बस रोने लग पड़ता है।
रजिस्ट्रार साहब का शव नदेसर से मनिकणिका घाट की ओर बढा।
ठर्रे पीकर धुत्त रहने वाले रजिस्ट्रार साहब आजीवन किसी का कुछ न बिगाड़े. बड़े सज्जन व्यक्ति थे. न किसी से लेना न किसी को देना। बस इ नाबालिग लईकन क का होई!बस इन नाबालिग बच्चों का क्या होगा!ये वही लोग थे. जो हर रोज ही मेरी सायकल की हवा खोल देते थे और मुझसे पूछते थेःका हो कुछ पउला!
रजिस्ट्रार साहब का पूरा परिवार रो रहा था। सहकर्मियों ने भी अश्रूपूरित ऑखों से उनसे विदा ली।
पता नही रजिस्ट्रार साहब अपने परिवार के लिये क्या व कितना छोड़ गए थे!
बाद के दिनों मे मुझे ये पता लगा कि उनका परिवार अभी भी नदेसर के उसी मकान मे रह रहा है। उनकी पत्नी अपनी जवानी के ढल जाने के बाद भी सज सॅवर कर घर से बाहर निकलती हैं। उनका बेटा हाई स्कूल मे फेल होकर दिन भर बनारस की सड़कों पर अपनी वेस्पा दौड़ाता रहता है और नदेसर का छोटा मोटा रंगदार बन बैठा है। उनकी बेटी डिबरूगढ मे अपने सास ससुर की छाती पर बैठे उन पर ताने कसती रहती है। उनसे अपनी सुरक्षा .अपनी स्वछंदता अपनी स्वतंत्रता मॉगती है। न मिलने पर अपने पति अंशुमान का हवाला देती है। अंशुमान के सारे समीप के रिश्तेदार बहू की तरफदारी करते हैं।
स्व रजिस्ट्रार साहब के परिवार मे पुनः जाने या इनसे मिलने की हिम्मत मै एकबार फिर से कभीं न जुटा सका।
बड़ा आत्मीय शहर है बनारस!

प्रमोद कुमार सिंह